सूरदास की भक्ति भावना

प्रस्तावना — 'भक्ति' शब्द 'भज' 'सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है, जिसका अर्थ है भगवान का सेवा प्रकार। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में ईश्वर में परम अनुरक्ति को ही भक्ति माना है — 'सा परानुरक्तिरीश्वरे'

नारद भक्ति-सूत्र के अनुसार भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा भी। जिस परम प्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा भक्ति को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है और अमर हो जाता है, जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है और न किसी वस्तु में आसक्त होता है। विषय-भोगों के प्रति उसको कोई उत्साह नहीं रहता और आत्मानन्द के साक्षात्कार से वह केवल के विषयों से निरपेक्ष हो कर मस्त रहता है।

भागवतकार ने भक्ति की व्याख्या इस प्रकार किया है — "मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्ण में भक्ति हो। भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है"।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है — "भगवान में माहात्म्यपूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है। मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं है"।

भक्ति के दो लक्षणों पर विशेष जोर दिया गया है — 1. ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम तथा 2. अन्य सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य। श्रीमद् भागवत में हमें भक्ति के तीन स्वरूप मिलते हैं

1. विशुद्ध भक्ति 2. नवधा भक्ति 3. प्रेमाभक्ति

श्रीमद् भागवत में विशुद्ध भक्ति का विवेचन कई स्थानों पर हुआ है। प्रारम्भ स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में भक्ति को योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय

भागवत में भक्ति के साधन और साध्य दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ है। ज्ञान की प्रधानता में भगवान का नित्य-निरंतर स्मरण, कीर्तन, आराधना भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान में प्रेमपूर्ण उसका साध्य पक्ष है। साधन रूपा भक्ति को नवधा भक्ति, वैधी भक्ति अथवा मर्यादा भक्ति भी कहते हैं और साध्य रूपा भक्ति को प्रेमा भक्ति तथा रागानुगा भक्ति अथवा रागात्मिका भक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। श्रीमद् भागवत के तृतीय स्कन्ध में भक्ति के चार भेद माने गए हैं — सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुणा। नारद-भक्ति सूत्र में प्रेम रूपा भक्ति के सम्बन्ध में ग्यारह आसक्तियाँ —

1. गुण महात्म्यासक्ति
2. रूपासक्ति
3. पूजासक्ति
4. स्मरणासक्ति
5. दास्यासक्ति
6. सख्यासक्ति
7. कान्तासक्ति
8. वात्सल्यासक्ति
9. आत्म निवेदनासक्ति
10. तन्मयतासक्ति
11. परम विरहासक्ति।

सूरदास के काव्य में दोनों ही प्रकार की भक्ति के दर्शन होते हैं। भागवतकार ने वैधी भक्ति को पराभक्ति या प्रेमा रूपा भक्ति की प्राप्ति का साधन माना है अर्थात भक्ति को सर्वोपरि मानते हुए ज्ञान और कर्म को भी अपनाया है। सूरदास ने भागवतकार की अपेक्षा ज्ञान और कर्म को बहुत कम महत्व दिया है।

सूर कृत भक्ति वर्णन निम्नलिखित रूपों में उपलब्ध होता है —

(क) साधारण भक्ति विवेचन — इसमें भक्ति के स्वरूप और उसकी महत्ता का वर्णन है।

(ख) वैराग्यपूर्ण भक्ति — भक्ति का स्वरूप बहुत कुछ निर्गुण पंथियों के समान है। यह सम्भवतः वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व प्रभाव के फलस्वरूप।

(ग) वैधी भक्ति

(घ) प्रेमा रूपा भक्ति (पुष्टि मार्गीय भक्ति)।

सूरदास ने सन्त कवियों की भाँति जाति-पाँति का भी विरोध किया है। भक्ति के नाते सारे मानव एक कोटि के हैं। संतों का "जाति-पाँति पूछै नहिं कोय, हरि को भजै सो हरि का होय" वाला सिद्धांत सूर मानते हैं।

सूर के प्रभु के यहाँ सब बराबर हैं।

Scanned with CamScanner

इनके दरबार में जाति पाँति का भेद नहीं।
"जाति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति के दरबार"
भगवान के भजन, स्मरण, कीर्तन से नीच व्यक्ति भी उत्तम पद प्राप्त कर लेता है। इनके यहाँ ऊँच नीच की गिनती नहीं की जाती। मनुष्य का सब कुछ भक्ति ही है साधन, उपाय। जप तप और उत्तम आदि व्यर्थ है केवल प्रभु की चाहने वाली बात होती है अतः उसी की आराधना करनी चाहिए करी गोपाल की सब होइ
"सो अपनो कुलभाग ही जानत, जाति नहीं है सोई।
साधन, जप, तप, तीरथ उत्तम पल सो सब इसी कोई।"
भगवद् भक्ति के बिना, कविता, कुल, काया, कोई आदि वैभव व्यर्थ है।

वैराग्यपूर्ण भक्ति के विषय में तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि सूरदास ने सन्त मत के तत्वों को भी अपनाया है। इन पदों में वैराग्य के संकेत मिलते हैं —
"चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग"

सूरदास ने वस्तुतः नवधा भक्ति को साधन कहा है और प्रेम लक्षणा भक्ति को उसका साध्य माना है। यही कारण है कि सूर ने प्रायः नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन बहुत संक्षेप में किया है — दास्य, सख्य और आत्म निवेदन का सम्बन्ध मन से है।

प्रेम लक्षणा भक्ति —— माधुर्य भाव की भक्ति है और गोपियाँ उसकी प्रतिनिधित्व करती हैं। सूर ने प्रेम भक्ति की अभिव्यक्ति नवधा भक्ति द्वारा ही मानी है। इस सम्बन्ध में सूरसागर में अनेक पद मिलते हैं —
"प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होइ नाथ। कृपा करि दीजै सोइ
और सकल हम देख्यौ जोइ, तुम्हरी कृपा होइ सो होइ"

प्रेम भक्ति की प्राप्ति के मुख्य साधन दो हैं — सत्संग और हरि कृपा। सूरदास ने स्थान स्थान पर इन दोनों साधनों पर बल दिया है। सूरदास की भक्ति भावना के विषय में डॉ० हरवंश लाल शर्मा का यह निष्कर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है कि — "वल्लभ के मिलने के पहले उनका मन स्थिर नहीं था और इसी लिए वह घिघियाते थे। उनके भक्ति-विवेचन

में उल्लेख निहित भाव रूप में अन्तर प्रतीत होता है। निर्गुण पंथ के प्रति धारणा को नहीं मानकर, उदासीनता में परिणित होकर भ्रमरगीत प्रसंग में पूर्ण विरोध के रूप में प्रकट दिखायी होगा॥

सूर की भक्ति के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए माधुर्य भक्ति पर भी कुछ प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। सूर के समकालीन रूप गोस्वामी ने "उज्ज्वल नीलमणि" नामक ग्रन्थ में भक्ति का विशद विवेचन किया है। माधुर्य भाव की भक्ति शृंगार प्रेम की भक्ति कही जा सकती है, क्योंकि प्रेम के जितने स्वरूप हो सकते हैं, वे सभी माधुर्य भक्ति में आ जाते हैं।

सूर उच्च कोटि के भक्त हैं। उनकी भक्ति अन्तःकरण की प्रेरणा और अन्तर की अनुभूति थी। भक्त होने के साथ-साथ वे कवि भी थे। उनकी भक्ति में कवि-सुलभ कल्पना का योग स्वभाव से ही हो गया है। विनोदी प्रकृति के होने के कारण हास्य और व्यंग्य का पुट भी उनके भक्ति सम्बन्धी पदों में आ गया है। संगीत के प्रकाण्ड पाण्डित्य ने लय, स्वर, तान आदि की योजना से उनके पदों को योग्यता प्रदान की।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सूरदास की भक्ति पद्धति से सम्बन्धित निम्नलिखित निष्कर्ष हमारे सम्मुख आते हैं—

1. सूर उच्च कोटि के भक्त हैं। उनकी भक्ति अन्तःकरण की प्रेरणा और हृदय अनुभूति थी वह उनकी रग-रग में समाई हुई थी। भक्ति के बिना जीवन व्यर्थ है—

वे जन मानुष जनम गँवायो।
हरि अभिमान विषय रस कीन्हों, स्याम सरन नहिं आयो।

2. सूरदास ने 'पुष्टि मार्ग' में दीक्षित होकर अपनी जिस भक्ति पद्धति का अनुसरण किया वह तो उनके सम्प्रदाय में सख्य कोटि की अनुरूप भक्ति कही जाती है।

3. सूरदास ने नवधा भक्ति के सभी रूपों का वर्णन किया है परन्तु प्रमुख रूप से वात्सल्य भक्ति और माधुर्य भक्ति को ही प्र...